International Journal of Education, Modern Management, Applied Science & Social Science (IJEMMASSS)
ISSN : 2581-9925, Impact Factor: 6.882, Volume 04, No. 02(II), April - June, 2022, pp. 269-276

गजनी और गोर वंश की सेनायें एवं युद्ध नीतिः एक विशेषणात्मक अध्ययन

डॉ. मीनू मिश्रा*

प्रस्तावना

इस्लाम के पैगम्बर मोहम्मद साहब के प्रादुर्भाव से सम्पूर्ण अरब जाति एक शक्ति के रूप में संगठित हो गई। उन्होंने इस्लाम के प्रचार के नाम पर मुसलमानों को जेहाद के लिये संगठित होने का अवाहन किया।

अरब जाति भारत तथा यूरोप के मध्य एक महत्वपूर्ण कड़ी थी। अरब लोगों का व्यापारी रूप में भारत से मधुर एवं प्राचीनतर संबंध था किन्तु उनके धर्म परिवर्तन का भारत पर प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सकता था। उन्होंने पहला आक्रमण बम्बई के निकट पश्चिमी तट पर स्थित थाना (ढाणे) पर 636–37 ई0 में किया था। उन्हें इसमें विशेष सफलता नहीं मिली थी उनका दूसरा आक्रमण 644 ई0 में स्थल मार्ग से मकरान में होकर पश्चिमी सिन्धु पर हुअ। यह आक्रमण खलीफा उथमन की आज्ञा से किया गया था और इसका मुख्य उद्देश्य सैनिक जाँच पड़ताल करना था इसके नेता हाकिम बिन जबाल अल–अब्दी ने रिपोर्ट में बताया कि ''पानी का बहुत अभाव है, फल घटिया प्रकार के और लुटेरे बड़े दुर्धर्ष हैं, यदि थोड़े सैनिक भेजे गये तो वे मारे जायेगे और यदि बड़ी सेना भेजी गयी तो वह भूख से मर जायेगी'' ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त रिपोर्ट के पश्चात 711 ई0 तक अरबों ने भारत में प्रवेश करने का कोई प्रयास नहीं किया। 711 ई0 की शरद ऋतु में इराक के सूबेदार ने अपने भतीजे तथा दामाद मोहम्मद बिन कासिम को भारत भेजा। मोहम्मद बिन कासिम के साथ 6000 सीरियाई घोड़े उतने ही इराकी ऊंट तथा सामान ढ़ोने के लिए 3000 बाख्ती पशु सम्मिलित थे। साथ ही प्रस्तर वृष्टि करने वाले 5 तोपखाने थे, एक तोपखाना 500 सैनिकों द्वारा चलाया जाता था। मोहम्मद बिन कासिम की अवस्था उस समय 17 वर्ष थी। वह एक प्रतिभाशाली सेनानायक था शीघ्र ही उसने उस समय के शक्तिशाली नरेश दाहिर तथा अन्य राजाओं को परास्त करके सम्पूर्ण सिन्ध पर अधिकार कर लिया। यद्यपि इस आक्रमण के द्वारा अरब–साम्राज्य की स्थापना न हो सकी और न ही इस्लाम का व्यापक प्रसार सम्भव हो सका, किन्तु इस आक्रमण ने भारत की सीमाओं को अन्य आक्रमण कारियों के लिये खोल दिया। इतिहासकार मोहम्मद हबीब के अनुसार(1) ''हमारे देश (भारत) के यथार्थ इतिहास के साथ महमूद का कोई सम्पर्क नहीं है। किन्तु हमें विरासत में उनसे हमारी प्याली में सबसे कड़वी बूंद मिली है''।

यद्यपि महमूद गजनी का हमारे इतिहास में कोई विशिष्ट स्थान नहीं है फिर भी उसके हमलों ने भारत में मुसलमान शासकों के लिए भारत–शासन की भूमिका बाँध दी थी अतः उसकी सेना की चर्चा करना बेहद आवश्यक है। जब उमय्या वंश के खलीफाओं ने मध्य एशिया में पदार्पण के उपरान्त पूर्व की ओर अभियान प्रारम्भ किया तो पश्चिमोत्तर सीमापर निवास करने वाली एक अत्यन्त क्रूर बर्बर असभ्य तुर्क जाति से उनकी भेंट हुई। तुर्कों ने अविलम्व इस्लाम स्वीकार कर लिया। 'मुसलमानों में तुर्कों का वहीं स्थान था जो भारत में क्षत्रियों का योद्धाओं के रूप में था'(2)

मुसलमानों ने इनकी सामरिक शक्ति से प्रभावित होकर उन्हें अपनी सेना में भरती कर अनेक महत्वपूर्ण पद प्रदान कर दिए। उसी वंश के अलप्तगीन नाम के एक उत्साही नवयुवक ने गजनी में स्वतंत्र तुर्क राज्य की स्थापना की। अलप्तगीन के दामाद के पुत्र महमूद ने अपने पराक्रम से बुखारा के आधे भाग पर अधिकार कर लिया। बगदाद के खलीफा अल–कादि वल्लाह ने उसे यमीनउद्दौला तथा अमीन–उल्–मिल्ला की वीरोचित उपाधियाँ प्रदान कीं।

* हेड, ऐसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, महिला विद्यालय, डिग्री कालेज, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

लेनपूल(3) के शब्दों में 10वीं तथा 11वीं शताब्दियों में तुर्कों का दक्षिण की ओर बढ़ना ''मुस्लिम साम्राज्य के अन्तर्गत एक अत्यधिक महत्वपूर्ण घटना थी''। पहले विलासी खलीफाओं ने इन तुर्कों से अंगरक्षकों का काम लिया, ''किन्तु अन्त में वे मुस्लिम ट्राय के लिये काठ का घोड़ा सिद्ध हुए''। शीघ्र ही वे खलीफाओं के स्वामी बन बैठे, प्रान्तों पर उन्होंने अधिकार कर लिया और मिस्र से लेकर समरकन्द तक साम्राज्य पर शासन करने लगे इसी पवित्र अवसर पर महमूद ने काफिरों के विरूद्ध जिहाद करने तथा मूर्ति पूजा का नाश करने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष भारत पर आक्रमण करने का प्रण किया।

भारत पर आक्रमण में महमूद का प्रथम सामना पेशावर के निकट जयपाल सिंह से हुआ। इतिहासकार उल्बी ने लिखा है कि इस अवसर पर महमूद ने जो सावधानी बरती उससे उसका उच्चकोटि का सेनानायकत्व प्रकट होता है और उसके कारण उसे जयपाल की वीर किन्तु अव्यवस्थित सेना के विरूद्ध विजय प्राप्त होना अवश्यम्भावी था। उसने उन लोगों से जिनके पास ही सेना सम्बन्धी लेखा जोखा रहता था, अपने सब घोड़ों, योद्धाओं और सामन्तों का लेखा–देखा, अपनी सेना में से 15000 अश्वारोही तथा पदाधिकारी छांटे। वे सब वीर और रेगिस्तान के विराल सर्पों तथा वन के सिंहों के तुल्य थे। उसने यह भी आज्ञा निकाली जो लोग निकाल दिए गए हैं अथवा जो युद्ध के अयोग्य अथवा उसके लिये इच्छुक नहीं हैं वे चुने हुए योद्धाओं में कादिप सम्मिलित न हों।

उनके विरूद्ध जयपाल की सेना में 12000 घुड़सवार, 30000 पैदल और 300 हाथी थे। जब यह विशाल सेना कुमुक की प्रतीक्षा कर रही थी, उसी समय महमूद ने उस पर धावा बोल दिया और उसे युद्ध करने करने के लिए बाध्य किया। उल्बी लिखता है कि महमूद का विश्वास था कि ''ईश्वर की आज्ञा से बहुधा छोटी सेना बड़ी को परास्त कर देती है।'' परिणाम यह हुआ कि ''ईश्वर के मित्रों ने अपने दुर्दम्य शत्रुओं को परास्त किया और पूरी तरह खदेड़ दिया। मध्याह्न होने से पहले ही मुसलमानों ने ईश्वर के शत्रु काफिरों से बदला ले लिया, उनमें से 15000 मौत के घाट उतार दिये। जयपाल, उसके मुख्य पदाधिकारी तथा सम्बन्धी बन्दी बना लिये गये और ''उन्हें मजबूती से रस्सियों में बाँधकर सुलतान के सम्मुख उपस्थित किया गया, मानों वे पापी थे जिनके मुख पर कुफ्र के चिन्ह स्पष्ट थे और जो शीघ्र ही दोजख भेजे जाने वाले थे।''

महमूद को यह ''विख्यात तथा शानदार विजय'', मंगलवार, मुहर्रम, हिजरी सन् 392 (28 नवम्बर, 1001 ई0) के दिन प्राप्त हुई, इसके उपरान्त वह अपने देश को लौट गया, ''सर्वशक्तिमान ईश्वर की कृपा से उसे हिन्द के ऐसे प्रान्त पर विजय मिली थी जो खुरासान से अधिक लम्बा, चौड़ा तथा उपजाऊ था।''

महमूद के दूसरे आक्रमण में उसकी मुठभेड़ आनन्दपाल से हुई। उस समय के भारतीयों के मनोवल का वर्णन करते हुए मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता ने लिखा है ''इन लोगों ने मुलसमानों को भारत से निकाल भगाना अपना कर्तव्य समझा। आनन्दपाल ने स्वयं सेना का नेतृत्व किया और आक्रमणकारी का सामना करने के लिए आगे बढ़ा... काफिरों की सेना में दिन–प्रतिदिन वृद्धि होती गयी और हर दिशा में उन्हें सहायता मिलने लगी। इस अवसर पर हिन्दू स्त्रियों ने अपने आभूषण बेच दिये और जो धन मिला उसे अपने पतियों के पास भेज दिया जिससे उन्हें युद्ध की आवश्यकता की सब वस्तुएँ मिल सकें और वे सच्चे मन से लड़ाई में भाग ले सकें। जो गरीब थीं उन्होंने सूत कातकर तथा अन्य परिश्रम करके चन्दा भेजा''।

फरिश्ता ने भारतीय सैनिकों के शौर्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि ''सुलतान की सावधानी के बावजूद भी जब युद्ध ने तेजी पकड़ा तो 30000 काफिर खोखर नंगे सिर तथा नंगे पैर भाले तथा अन्य हथियार लेकर महमूद की दो पांतों को तोड़ कर घुस गये और घुड़सवार दल के मध्य में पहुँच कर अपनी तलवारों, भालों और बर्छियों से सैनिकों तथा घोड़ों को ऐसा काटा कि कुछ ही मिनट में तीन चार हजार मुसलमानों का संहार हो गया। इन खोखर पैदलों का प्रहार इतना सफल हुआ कि उनके क्रोधोन्माद को देख कर सुलतान स्वयं लड़ाई के घमासान से पीछे हट गया और उस दिन का युद्ध बन्द करने की सोचने लगा। किन्तु अदम्य पराक्रम के साथ सामना करते हुए भी जब ज्वलनशील गोलों और बाणों के प्रहार से आनन्दपाल का हाथी भाग खड़ा हुआ तो भारतीय सेना के पैर उखड़ गए और हिन्दू सेना की पराजय हो गयी।

महमूद, ने थानेश्वर, कन्नौज, मथुरा, भटिण्डा, नारायणपुर को पराजित करने के बाद दिल्ली को जीता। किन्तु उसका सर्वाधिक महत्वूपर्ण एवं निकृष्ट आक्रमणात्मक अभियान सौराष्ट्र के सोमनाथ–मंदिर पर हुआ। इस अभियान में उसकी नियमित सेना के अतिरिक्त तुर्किस्तान आदि देशों से लूट की इच्छा वाले 30000 अतिरिक्त सैनिक भरती हो गए थे। सोमनाथ–मंदिर का ध्वंस भारतीय इतिहास की कलंकमयी तथा अत्यंत हृदय–द्रावक घटना है।

तुर्कों के लिए भारतीय आक्रमण शीतकालीन खेल के सदृश था। जब अपने राज्य के प्रान्तों की परिस्थितियाँ अनुकूल होतीं तभी वे हिन्दुस्तान के मैदानों पर धावा बोल देते। शीतकाल में यहाँ जाड़ा भी उतना कड़ा नहीं पड़ता था। शरद तथा शीत ऋतु में इन 'काफिरों' के देश से धन लूटकर बसन्त तथा गर्मी की ऋतुएँ घर बिताना उनके लिए अधिक आनन्ददायक हो जाता था। इस्लाम के आन्तरिक द्रोह का उन्मूलन तथा मूर्ति–पूजा का नाश करना भी 'ईश्वर के मित्रों' के 'अध्यात्मिक स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद' होता था। किन्तु 1008 ई0 में पेशावर के युद्ध में भारतीय राष्ट्रीय मोर्चे की पराजय ने महमूद के महाकाव्य का नया अध्याय प्रारम्भ कर दिया। उसके बाद वह निश्चित रूप से स्वर्ण की तलाश में जुट गया।

नगरकोट (1009 ई0), थानेश्वर (1014 ई0), मथुरा (1018 ई0), कन्नौज (1019 ई0) और सोमनाथ (1025 ई0) सोने के अक्षर थे जो महमूद के लोलुप हृदय की पट्टी पर लिखे हुए थे। इन स्थानों के धन–कोषों को यह लोभपूर्ण दृष्टि से देखा करता था। 1008 ई0 में नगरकोट (काँगड़ा) के प्राचीन मन्दिर की लूट से मानों इस चीते (महमूद) को रक्त का स्वाद मिल गया। उसकी लोलुपता तब तक शान्त नहीं हुई जब तक कि 1025 ई0 में उसने सोमनाथ को नहीं लूट लिया। तब नियति ने उसे गजनी लौटने को बाध्य किया।

एक के बाद एक, हर मन्दिर में वही कहानी दुहरायी गयी। ''हिन्दुओं ने शत्रु को टिड्डी दल की भाँति आते हुए देखा, भय के मारे उन्होंने फाटक खोल दिये और उसी तरह भूमि पर गिर गये, जैसे बाज के सामने चिड़ियाँ अथवा बिजली के सामने वर्षा का जल।'' उल्बी के अनुमान से नगरकोट की लूट में उन्हें इतनी धनराशि मिली कि जितने भी ऊँट उन्हें मिल सके, उनकी पीठ पर उन्होंने उसे लाद दिया और जो बच रहा उसे पदाधिकारियों ने आपस में बाँट लिया''।

महमूद के बाद उसका पुत्र मसूद जिसका सिद्धान्त था कि 'साम्राज्य सबसे अधिक शक्तिशाली तलवार के वशीभूत होता है', गद्दी पर बैठा। किन्तु मसूद तथा उसके अन्य उत्तराधिकारियों की अयोग्यता तथा पराक्रमहीनता के कारण भारत गजनी वंश के अन्य आक्रमणों से बचा रहा।

महमूद गजनी के आक्रमणों के करीब डेढ़ सौ वर्ष बाद जब मुहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया तब भी आर्यावर्त्त की अराजकता तथा भातृविरोध को समाप्त करने के लिए कोई राष्ट्रीय शासन स्थापित नहीं हो सका।(4)

गोर जाति गजनी तथा हिरात के मध्य फैली हुयी थी। यह अफगान उद्गम की लड़ाकू जाति थी। महमूद की सेना में लूटपाट की दृष्टि से इनका बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था। महमूद के बाद यह सर्वथा अनियंत्रित होकर लूटपाट करने लगे।

भारत–आक्रमणकारी मुहम्मद गोरी का जन्म इसी घराने में हुआ था। मुहम्मद गोरी ने पूर्ववर्ती आक्रमणकारियों तथा मुस्लिम यात्रियों और इतिहासकारों के अनुभवों के आधार पर आक्रमण की एक सुनिश्चित योजना बना ली थी। उसी योजना क्रम में उसने मुसलमान और उच्छ को जीतने के बाद गुजरात और राजपूताने पर आक्रमण की योजना बनायी किन्तु अन्हिलवाड़ के मूलराज द्वारा उसे असहनीय पराजय का सामना करना पड़ा।

मुहम्मद गोरी इस हार के बाद निरन्तर अपनी शक्ति को इकट्ठी करता रहा फिर उसने पंजाब जीतते हुए पृथ्वीराज चौहान पर आक्रमण किया। पृथ्वीराज उस समय उत्तर भारत का सर्वशक्तिमान प्रतापी नरेश था। इस युद्ध में भी मुहम्मद गोरी को पराजय का सामना करना पड़ा। 'इससे पूर्व काफिरों के हाथ मुसलमानों ने इतनी जर्बदस्त शिकस्त नहीं खायी थी।(5)

दिल्ली–विजय के बाद गोरी ने अजमेर, कन्नौज तथा बनारस को जीता और फिर हिन्दुस्तान का उत्तराधिकार ऐबक को सौंपकर वापस चला गया। ऐबक ने कलिंजर और महोबा पर विजय प्राप्त की। ऐबक का अत्यन्त महत्वपूर्ण युद्ध चन्देलों से हुआ।

कुतुबुद्दीन ऐबक ने मुहम्मद गोरी के वापस चले जाने के पश्चात भारत के विशाल भू भागों पर अधिकार कर लिया और एक शक्तिशाली स्थिति प्राप्त कर ली। इस्लामी सत्ता को सुदृढ़ करने में शम्सुद्दीन इल्तुमिश तथा (1210–35 ई0) तथा गियासुद्दीन बलवन (1266–87 ई0) ने विशेष योगदान दिया। इल्तुतमिश ने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की तथा अपने उत्तराधिकारियों के लिये एक सुदृढ़ साम्राज्य की आधारशिला रखी उसने विदेशी मामलों में कुशलता, दृढ़ता एवं दूरदर्शिता का परिचय दिया। मध्यकालीन भारत मंगोलों के आक्रमण से सुरक्षित रहने के कारण इल्तुतमिश का ऋणी है। इल्तुतमिश के पश्चात सैनिक दृष्टि से दासवंश का पतन हो गया। जियउद्दीन बरनी के अनुसार ''शम्सुद्दीन की मृत्यु के बाद तीस वर्ष के युग में (1236–66 ई0) सुलतानों की अयोग्यता तथा शम्सी गुलामों की दर्पपूर्ण शक्ति के कारण लोगों में अस्थिरता, अवज्ञा तथा अहंकार की ऐसी भावना उत्पन्न हो गयी कि प्रत्येक अवसर की प्रतीक्षा करते और उससे लाभ उठाते थे। राजशक्ति का भय, जो अच्छे शासन का आधार तथा राज्य का ऐश्वर्य का स्रोत है, सब लोगों के हृदय से जाता रहा था और देश दुर्दशा का शिकार बन गया था।''

गजनी, गोरी तथा गुलाम तीनों ही एक ही परम्परा के राजवंश माने जाते हैं। जिस प्रकार तीनों वंशों की भारत आगमन की परम्परा समान है, ठीक उसी प्रकार तीनों ही वंशों की सेना का गठन और उसकी नीति भी समान है। संक्षेप में उनके सेना–संगठन आदि के बारे में प्राप्त तथ्य प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है।

अर्जे आम (आम भरती) निरा आक्रमणकारी जाति होने के कारण इनके पास काफी सुदृढ़ सेना रहती थी। निरन्तर युद्धों के कारण इनकी सैन्य शक्ति क्षीण होती रहती थी। इसीलिए प्रायः नये सैन्य अभियान के समय ये लोग अर्ज आम (आम भरती) का आदेश प्रदान कर अपनी खोई शक्ति पुनः प्राप्त कर लेते थे। इतिहासकार बरनी ने लिखा है, ''दो लाख आदमी, सवार, प्यादे, पायक, धानुक, कहार, किबानी, खुद अस्पा, तीर चलाने वाले, दास और नौकर चाकर, व्यापारी बाजारी अर्जे आम में भरती हुए।''(6)

समस्त सुल्तानों की मान्यता थी, ''सैनिकों के विषय में पूछ–ताछ करते रहना चाहिए। जिस किसी के बाप–दादा तथा पूर्वज सैनिक न रहे हों उन्हें सवार तथा सरखेल न बनाना चाहिए।''(7)

रणभूमि में प्रदर्शित साहस और शौर्य के आधार पर ही पदोन्नतियाँ की जाती थीं। पूरा इतिहास उदाहरणों से भरा है कि साधारण सैनिकों ने सुलतान का आसन ग्रहण कर लिया। ''वह एक उच्च पदाधिकारी तथा सरखेल हो गया और फिर सुलतान की कृपा दृष्टि के कारण वह अमीर आखुर हो गया। कुतुबुद्दीन फिर पायगाह के अधिकारियों का अफसर हो गया। सुलतान ने उसको (कुतुबुद्दीन ऐबक को) सम्मानित किया और उसे गजनी वापस आने पर कोहराम की अक्रता प्रदान की। वह विजय के लिए मेरठ रवाना हुआ।''(8)

अर्ज (निरीक्षण) अर्ज अर्थात निरीक्षण करने की नियमित विधियां प्रयोग में लायी जाती थीं। ''पहले मैसरे (बाईं ओर) फिर कल्ब (मध्यभाग) और फिर मैमने (दाहिनी ओर) का अर्ज करना चाहिए। अर्ज करने वाला ऊपर बैठे, ताकि सवार तथा प्यादे दोनों को देख सके। नकीब को सामने खड़े होना चाहिए। पहले बरगुसत्वान तथा उसके शस्त्रास्त्रों का, फिर वेतनभोगी प्यादों का, उसके बाद सहायतार्थी प्यादों का, उसके बाद बड़े अमीरों का, फिर छोटे अमीरों का अर्ज होना चाहिए। प्यादों के अर्ज के समय लिखना चाहिए कि वे किस सरहंग के अधीन हैं। युद्ध के पूर्व के अर्ज में घोड़ों तथा हथियारों के बारे में कदापि न पूछा जाय। सभी पर कृपा रखी जाय। इनाम का आश्वासन दिया जाय जिससे लोग प्राणों की बलि दे सकें। आरिज को सेना का माता–पिता होना चाहिए क्योंकि सेना की शक्ति आरिज पर निर्भर है। बड़े–बड़े अमीरों एवं सेवा के बड़े सिपह सालारों को सुलतान के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए तथा उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। गिनती के समय संख्या धीरे से बताना चाहिए, ताकि दुश्मन के गुप्तचर सुन न सकें।''(9)

युद्ध–अभियान

सफल सैन्य संचालन एवं कुशल निर्देशन पर जय पराजय निर्भर है यह सभी सुलतानों की धारणा थी। अतः पंक्ति बद्ध ब्यूह रचना आवश्यक मानी जाती थी। ''सेना को चार दलों में बांटा जाता था।

- मैमना– इसमें प्रसिद्ध चाहने वाले वीरों को रखा जाता था।
- मैसरा– उन धनुर्धारियों को रक्खा जाता था जिन्हें सहारे की आवश्यकता होती थी और जो ढाल आगे रखते हैं तथा घुटनों के बल पर झुक कर बाण चलाते हैं।
- साका– अधिकारी वर्ग को रक्खा जाता था।
- सज्जा – इसमें सेना की सजावट करने वाले, बाजे वाले तथा वीरों को उत्साहित करने वाले गायकों को रक्खा जाता था।

बड़े–बड़े सिपहसालार सरहंग, दबीर, बुद्धिमान, चिकित्सक, नदीम, ज्योतिषी बादशाह तथा सेनापति के साथ रहें। दो योग्य अमीर बादशाह के साथ रहें। निरन्तर निरीक्षण होना चाहिए।''(10)

''सेना को ऐसे स्थान उतारा जाय जहाँ जल तथा चारा हो, शत्रु की पहुँच के बाहर हो। नदी, नहर अथवा पर्वत के आंचल में हो। सभी स्थानों पर सावधानी आवश्यक है। शिविर के सामने आक्रमण से बचाव के लिए रूकावट डाल देना चाहिए। सर्व प्रथम मुहद्दम उसके बाद दक्षिण पक्ष फिर बाम पक्ष, उसके बाद मैमना फिर मैसरा उसके बाद कल्ब, (मध्य भाग) को। उसके बाद स्त्रियों के डेरे, रसोई, राजकोष जर्रार्द खाना (अस्त्रागार) रिकाबखाना (भण्डार घर) उसके बाद घायल और बन्दियों को उतारना चाहिए। सभी एक दूसरे से पृथक, हों। स्त्रियों के पीछे घोड़े, पशु, ऊँट तथा प्यादे होने चाहिए। सवारों की अधिक संख्या का शिविर सेना के बाई ओर हो उनके मध्य में दासों का शिविर होना चाहिए। प्यादों की दो तीन पंक्तियाँ अस्त्र–शस्त्र से सुसज्जित आगे होनी चाहिए।''(11)

फखरे मुदब्बिर ने गुप्तचर सेना के संगठन का उल्लेख किया है उसका कहना है कि तलाया (गुप्तचर सेना) की नियुक्ति इस्लामी सेना की विजय के लिए आवश्यक होती है।(12)

छापामार युद्ध

तलाया द्वारा दिए गए भेद के अनुसार शुत्र सेना की कमजोरी को दृष्टिगत रखते हुए छापामार युद्ध किया जाता था। छापा चार दलों में विभाजित कर मारा जाता था। एक दल प्यादों का होता था जो धनुर्धारी होते थे तथा कुछ लोग तलवार, भाला और ढाल लिए सतर्कता पूर्वक मार्ग की रक्षा के लिए दाहिनी पंक्ति तथा मध्य में कुछ लोग छिपे रहते थे। किसी ऐसे स्थान पर आग जलाई जाती थी जहाँ अपनी सेना को शत्रु न देख सके किन्तु शत्रु की प्रत्येक चीज देखा जा सके। तीसरा दल मैसरा सावधानी के साथ प्रतीक्षा करता रहता था तथा उपयुक्त अवसर पर आक्रमण कर देता था। चौथा दल तफारीक (छोटी टुकड़ी) सेना से दूर जमा रहता था।(13)

युद्ध स्थल का निर्वाचन तथा घात

युद्ध–स्थल का निर्वाचन करने के पूर्व यह ध्यान में रखा जाता था कि वह शत्रु राज्य के बहुत भतर न हो। पर्वतीय, कठिन तथा ऊबड़–खाबड़ भूमि–युद्ध के लिए उत्तम मानी जाती थी। स्थान ऐसा हो जहाँ वस्तुएँ आसानी से लायी जा सकें। बहुत दुर्गम स्थान नहीं होना चाहिए। युद्ध–स्थल आबादी से काफी दूर होना चाहिए। प्रातःकाल युद्ध नहीं छेड़ना चाहिए। अधिक सेना होने पर आधी सेना युद्ध करे और आधी आराम। युद्ध उस समय छेड़ना चाहिए जब अपनी सेना युद्ध के लिए तैयार हों और शत्रु–पक्ष के लोग भूखे–प्यासे हों। मध्याह्न के उपरान्त युद्ध छेड़ने से यह लाभ होता था कि रात हो जाने पर अगर हार हो रही हो तो भागने में आसानी रहती थी।

युद्ध के समय सबसे महत्वपूर्ण बात होती थी घात लगाना। युद्ध दो प्रकार के होते थे एक तो खुल्लम–खुल्ला आक्रमण कर देना और दूसरा घात लगाकर अनुकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा करना। घात लगाने के लिए युद्ध निपुण कुशल घुड़सवारों की नियुक्ति की जाती थी।(14)

युद्ध दो प्रकार का होता था पहला सवारों द्वारा और दूसरा प्यादों द्वारा। यों तो शत्रुओं की अनेक कोटियां थीं किन्तु मुख्य दो प्रकार के शत्रु माने जाते थे।

- मुसलमान।
- काफिर (हिन्दू)

प्रथम प्रकार के शत्रु अपने ही रक्त के लोग माने जाते थे और दूसरे प्रकार के वे शत्रु माने जाते थे जिनसे लड़ना पवित्र माना जाता था। उनके साथ लड़ी जाने वाली लड़ाई जेहाद (धर्म–युद्ध) मानी जाती थी। इस प्रकार का युद्ध मुसलमानों के लिए उतना ही पवित्र माना जाता था जितना कि नेमाज और रोजा।

दुर्ग निर्माण एवं दुर्ग–विजय

दुर्गो का निर्माण अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता था क्योंकि उसे रक्षा तथा कुशल सैन्य संचालन का महत्वपूर्ण गढ़ माना जाता था। यह किले कई प्रकार के होते थे :–

- भूमिगत।
- भूमि के ऊपर।
- पर्वतों की चोटियों पर।

दुर्ग निर्माण के लिए अभेद्य पत्थरों का प्रयोग किया जाता था। यह पत्थर सैकड़ों मील दूर से ढ़ोकर लाए जाते थे। किले पर विजय प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती थी सीढ़ी, रस्सी की कमन्द और फन्दे, खरक मतर्स, मन्जनीक, अरादा (पत्थर तथा आग फेंकने की मशींन) दहमुर्द्रा (शक्तिशाली व्यक्ति) अरादये खस्ता (एक मशीर जो अग्निवर्षा करती है) दीवारकन (दीवार खोदने का औजार) आतिशकश (आग फेंकने वाला बेलचा) भाले, फावड़े, बरछे आदि।

सैन्य संगठन

मुस्लिम इतिहासकारों ने सेना के विभिन्न विभागों के सम्बन्ध में कोई निश्चित बात नहीं बताई है। यत्र–तत्र उन्होंने जो कुछ संकेत दिया है उसके आधार पर सेना को निम्न भागों में बाँटा गया था।

- अश्वारोही सेना।
- पदाति सेना।
- गज सेना।
- नौ–सेना।

अश्वारोही सेना

जिन देशों से आक्रमणकारी शासक भारत में आये उदाहरणार्थ अरब, गजनी, मध्य एशिया, चीन, अफगानिस्तान आदि उन सभी देशों में दुर्लध्य पर्वत श्रेणियों और पथ के बीहड़पन के कारण आवागमन का मार्ग सुगम नहीं था। उन्हें प्रत्येक स्थान पर कवीलों तथा राज्यों से युद्ध के कारण शीघ्रगामी वाहनों की आवश्यकता पड़ती थी। प्रायः उन सभी देशों में पर्याप्त संख्या में ऊँची नस्ल के घोड़े सुलभ थे। उनकी शीघ्रगामिता तथा सामरिक उपयोगिता के कारण आक्रमणकारी शासकों ने उन्हें युद्ध के सर्वोत्तम साधन के रूप में ग्रहण कर लिया।

पदाति सेना

पदाति सेना के सैनिकों को प्यादा या पायक कहा जाता था। उस समय के युद्धों में आयुध, व्यूह–रचना, रणनीति तथा कुशल सैन्य संचालन का अत्यधिक महत्व होते हुए भी विजय का सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण शक्ति सैनिकों की संख्या ही मानी जाती थी। पदाति सेना के संख्या बाहुल्य पर युद्ध में विजय निश्चित मानी जाती थी। अतः प्रत्येक सुलतान का प्रयत्न होता था कि वह अधिक से अधिक पदातियों को भरती करें। यही कारण है कि प्रत्येक सुलतान की सेना में सबसे ज्यादा संख्या पदाति सेना में ही मिलती है।

गज सेना

प्रत्येक सुलतान के पास हाथियों की शक्तिशाली गज सेना रहती थीं शिहाबुद्दन अलउमरी ने लिखा है, ''सुलतान के पास तीन हजार हाथी हैं, जिन्हें युद्ध के समय सोने के काम की लोहे की झूलें पहनायी जाती हैं। हाथियों पर छत्र तथा हौदज होते हैं। बैठने के स्थान पर पत्तुर लगे होते हैं। उनमें लकड़ी की गुमरियाँ लगी रहती हैं जो कीलों द्वारा जकड़ी जाती हैं। हिन्दुस्तानी लोग युद्ध के लिये अपने बैठने का स्थान इन्हीं में बनाते हैं। हाथी की शक्ति के अनुसार एक हाथी पर 6 से 10 आदमी तक बैठ सकते हैं।''(15)

नौ–सेना

यद्यपि स्थायी नौ–सेना का कोई अस्तित्व नहीं था। आवश्यकता पड़ने पर उसका भी प्रबन्ध हो जाता था। नौ–सेना के अध्यक्ष को शहन–ए–बहर कहा जाता था।(16)

सेवाधिकारी

सेना में निम्नलिखित पदाधिकारी होते थे।

आरिजे मुमालिक

आरिजे मुमालिक शाही सेना का सर्वोच्च अधिकारी माना जाता था। यह दीवाने अर्ज (सेना सम्बन्धी मुख्य विभाग जिसमें प्रत्येक सैनिक का पूरा ब्यौरा रक्खा जाता था) को नियंत्रित करता था।

खान

यह अपने विभाग की सेना का प्रधान अधिकारी माना जाता था। इसके मातहत दस मलिक होते थे जिनके द्वारा वह अपनी सेनाओं का युद्धाभ्यास, सैन्य प्रबन्ध तथा युद्ध के समय सेनाओं का कुशल संचालन करता था। खान के पास लगभग दस हजार संख्या वाली सेना होती थी।

मलिक

यह एक हजार की सेना का मुख्य अधिकारी होता था। इसके मातहत दस अमीर होते थे।

अमीर

यह अपनी सैन्य टुकड़ी के मुख्य अधिकारी माने जाते थे। अमीर मुख्यतः तीन प्रकार होते थे।

(1) अमीराने हजारा। (2) अमीराने सदा (3) अमीराने पंजाह

- **सिपह–सालार–** सेना में सिपहसालारों का पद काफी महत्वपूर्ण माना जाता था। इनकी टुकड़ी में प्रायः सौ सैनिक होते थे। सिपहसालार उनकी सैनिक शिक्षा तथा नेतृत्व आदि के लिये पूरी तरह जिम्मेदार होता था।
- **सरखेल–** इन्हें आजकल के छोटे–मोटे हवलदारों जैसा दर्जा प्राप्त था।
- **मुस्तब –** साधारण सैनिक को मुस्तब कहा जाता था। यह दो प्रकार के होते थे स्थायी एवं अस्थायी।
- **दो अस्पा –** दो अस्पा उन सिपाहियों को कहते थे जो दो घोड़ों को रखने के अधिकारी होते थे।
- **एक अस्पा –** घुड़सवार सैनिक को एक अस्पा कहा जाता था।

- **पायक का अस्पा –** वह पदाति सेना सैनिक समझा जाता था किन्तु उसे घुड़सवारी का पूरा ज्ञान प्राप्त रहता था।
- **पायक –** पदाति सेना के साधारण सैनिक को पायक कहा जाता था।
- **खासादार–** शाही सेना तथा सुलतान के शास्त्रागार विभाग के अधिकारी को खासादार कहा जाता था।
- **आखुरबक –** यह अश्व विभाग का अधिकारी होता था। अच्छी नस्ल की पहचान, उन्हें युद्ध के लिये प्रशिक्षित करना, देखभाल, रातिब आदि का प्रबन्ध, अश्व रोगों तथा अन्य संक्रामक रोगों से बचाव उसका मुख्य कार्य था।
- **शहन ए पील –** हाथियों की सेना के अधिकारी को शहन ए पील कहा जाता था।
- **चाऊश–** सेना की कवायद तथा युद्ध–अभियान में सैनिकों को कतार में खड़े होने की शिक्षा देने वाले को चाऊश कहा जाता था।
- **शहन–ए–बहर–** नौ–सेना के अध्यक्ष का शहन–ए–बहर था।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. मुहम्मद हबीब– सुलतान महमूद ऑफ गजनी, पृ0 83।
2. मुहम्मद हबीब –सुलतान महमूद ऑफ गजनी, पृ0 9।
3. लेनपूल – मिडीवल इण्डिया।
4. मुहम्मद हबीब –सुलतान महमूद ऑफ गजनी, पृ0 102।
5. डॉ. ईश्वरी प्रसाद – हिस्ट्री ऑफ मिडीवल इण्डिया, पृ0 147।
6. जियाउद्दीन बरनी – तारीखे फीरोजशाही, अध्याय 85–86 एवं सैयद अतहर रिजवी – आदि तुर्क कालीन भारत पृ0 184।
7. फखरे मुदव्विर– 'आदाबुलहर्बोशुजाअत' अध्याय 49(अ)।
8. मिनहाज–उस–सिराज – 'तबकाते नासिरी' अध्याय, 139 तथा सैयद अतहर रिजवी– 'तुर्ककालीन भारत'।
9. फखरे मुदव्विर– 'आदाबुलहर्बोशुजाअत' अध्याय– 109–110–111।
10. फखरे मुदव्विर– 'आदाबुलहर्बोशुजाअत' अध्याय– 126–129–130 एवं सैयद अतहर रिजवी – आदि तुर्क कालीन भारत पृ0 263–264।
11. फखरे मुदव्विर– 'आदाबुलहर्बोशुजाअत' अध्याय– 122(अ), 112(ब), 113 एवं सैयद अतहर रिजवी – आदि तुर्क कालीन भारत पृ0 263–264।
12. फखरे मुदव्विर– 'आदाबुलहर्बोशुजाअत' अध्याय–115–116 एवं सैयद अतहर रिजवी – आदि तुर्क कालीन भारत।
13. फखरे मुदव्विर– 'आदाबुलहर्बोशुजाअत' अध्याय– 111–119।
14. फखरे मुदव्विर– 'आदाबुलहर्बोशुजाअत' अध्याय– 120–121, 123–124 एवं सैयद अतहर रिजवी – आदि तुर्क कालीन भारत।
15. शिहाबुद्दीन–अल–उमरी–'मसालिकुल अबसार फी ममालिकुल अमसार' एवं रिजवी–तगुलक कालीन भारत।
16. डॉ. ईश्वर प्रसाद – हिस्ट्री ऑफ मिडीवल इण्डिया पृ0 341।

❖◆❖